© 2018 IJSRSET | Volume 4, Issue 7, March-April-2018
Print ISSN: 2395-1990 | Online ISSN : 2394-4099 | Page No : 693-698

पुराणों में वर्णित चातुर्वर्ण्य व्यवस्था

डॉ. चन्द्र कान्त मिश्र
वरिष्ठ प्रवक्त–संस्कृत,
राजकीय महाविद्यालय, डुमरियागंज, सिद्धार्थनगर, उ0प्र0।

वर्ण–व्यवस्था प्रत्येक व्यक्ति को एक सामाजिक प्राणी मानकर उसके कर्त्तव्यों और अधिकारों का इस प्रकार निरूपण करता है कि वे उसके पारिवारिक वातावरण और सामूहिक हित दोनों दृष्टियों से समीचीन हों। प्राचीन भारत में मानव का सामाजिक जीवन चातुर्वर्ण्य एवं चार आश्रमों पर आधृत था। पुराणों में भारतीय वर्णाश्रम व्यवस्था की वैज्ञानिकता एवं उपादेयता का सम्यक् निदर्शन किया गया है। श्रुति–स्मृति विहित एवं शिष्टाचार परिगृहीत होने से वर्णाश्रम धर्म सर्वश्रेष्ठ धर्म है। मत्स्यपुराण का निम्नलिखित श्लोक उक्त भाव को स्पष्टतः अभिव्यक्त करता है–

श्रुतिस्मृतिभ्यां विहितो धर्मो वर्णाश्रमात्मकः।
शिष्टाचारप्रवृद्धश्च धर्मोऽयं साधुसम्मतः।।[1]

'वृ' धातु से निष्पन्न 'वर्ण' शब्द का संस्कृत साहित्य में अनेक अर्थों में प्रयोग हुआ है। ऋग्वेद में अनेक स्थलों पर 'वर्ण' शब्द 'रंग' या 'प्रकाश' अर्थ में प्रयुक्त है।[2] कहीं–कहीं 'वर्ण' का सम्बन्ध ऐसे जन–समुदाय से है जिनका धर्म'काला' या 'गोरा' है।[3] वर्ण चार हैं–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। इनके व्रत, व्यवहार एवं धर्म आदि के नियमों को चातुर्वर्ण्य व्यवस्था कहते हैं। 'मार्कण्डेय पुराण' में चातुर्वर्ण्य का उल्लेख मिलता है।[4] गरुड पुराण के अनुसार ब्राह्मण,क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र क्रमशः ब्रह्मा के मुख,वक्षःस्थल, उरू एवं पद से उत्पन्न हुए–

आस्याद्वै ब्राह्मणा जाता, बाहुभ्यां क्षत्रियाः स्मृताः।
उरूभ्यां तु विशः सृष्टाः शूद्रः पद्भ्यामजायत्।।[5]

विष्णुपुराण में भी यही उल्लेख प्राप्त होता है, किन्तु क्षत्रिय वर्ण को 'बाहु' से उत्पन्न न मानकर वक्षःस्थल से उत्पन्न माना गयाा है।[6] वायुपुराण में भी क्षत्रिय वर्ण को ब्रह्मा के बाहु से उत्पन्न न मानकर वक्ष से उनकी उत्पत्ति बतायी गयी है।[7] विश्व का प्राचीनतम साहित्य ऋग्वेद भी पौराणिक मत का ही समर्थन करता है।[8] यह विभाजन गुण एवं कर्म पर आधारित था।

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।[9]

वर्ण–धर्म :

प्राचीन मनीषियों ने धर्म का निर्धारण देश, काल एवं परिस्थिति के अनुसार किया है। उनके अनुसार धर्म के दो स्वरूप प्राप्त होते हैं– सामान्य धर्म, जो देश, काल एवं पात्र के परिवर्तित होने पर भी अपरिवर्तित रहे तथा विशिष्ट धर्म, जो देश, काल एवं पात्रानुरूप परिवर्तित होता हैं। सामान्य धर्म के अन्तर्गत सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, दयादि नैतिक गुणों का समावेश किया जा सकता है। विशिष्ट धर्म में वर्णधर्म, आश्रम–धर्म, गुण–धर्म, युग–धर्म और आपद्धर्म

समाविष्ट हैं। गुणों की भिन्नता के कारण ब्राह्मण , क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के प्रभाव एवं कर्मवैभिन्न्य का होना स्वाभाविक ही है।

ब्राह्मण की उत्पत्ति विराट् पुरूष के मुख से होने के कारण उनके कर्तव्य बुद्धि से सम्बन्धित थे। दान,वेदाध्ययन एवं यज्ञ करना ये तीन ब्राह्मण के धर्म या आवश्यक कर्तव्य थे–

दानमध्ययनं यज्ञो ब्राह्मणस्य त्रिधोदितः।

धर्मो चान्यश्चतुर्थोऽस्ति धर्मस्तस्यापदं विना।।[10]

गरुड़पुराण और कूर्मपुराण में ब्राह्मण के षट् कर्तव्यों का निर्देश हुआ है–

यजनं याजनं दानं ब्राह्मणस्य प्रतिग्रहम्।

अध्यापनञ्चाध्ययनं षट् कर्माणि द्विजोत्तमाः।।[11]

श्रीमद्भागवतपुराण में भी ब्राह्मण के षट् कर्म बताये गये हैं–

विप्रस्याध्ययनादीनि षडन्यस्याप्रतिग्रहः।।[12]

पुराणों से भी विदित होता है कि ब्राह्मणों का राजनीति में विशेष प्रवेश था। राजा अगर ब्राह्मणों से द्वेष और ईर्ष्या करता था तो उसका राज्य विनष्ट हो जाता था।[13] पुराणों में ब्राह्मण–हन्ता को नरकगामी कहा गया है।

यज्ञ करना, दान देना, और पढ़ना क्षत्रिय और वैश्य के सामान्य धर्म थे। क्षत्रिय का दण्ड धारण करना और वैश्य का कृषि करना इन दोनों वर्णों के विशिष्ट धर्म थे–

दानमध्ययनं यज्ञो धर्मः क्षत्रियवैश्ययोः।

दण्डस्तथा क्षत्रियस्य कृषिर्वैश्यस्य शस्यते।।[14]

कूर्मपुराण से भी यह तथ्य द्योतित होता है।[15] मार्कण्डेयपुराण में भी दान देना, यज्ञ और वेदाध्ययन– ये तीन कर्म ब्राह्मणों की तरह क्षत्रियों के लिए भी विहित हैं लेकिन पृथिवी की रक्षा एवं शस्त्राभ्यास उनकी जीविका के साधन थे।[16] श्रीमद्भागवतपुराण में वर्णित है कि क्षत्रिय को दान नहीं लेना चाहिए। प्रजा की रक्षा करने वाले क्षत्रिय का जीवन–निर्वाह ब्राह्मण के अतिरिक्त अन्य सबसे यथायोग्य कर तथा दण्ड आदि के द्वारा होता है–

राज्ञो वृत्तिः प्रजागोप्तुरविप्राद् वाा करादिभिः।।[17]

यज्ञ, अध्ययन एवं दान यद्यपि वैश्यों के लिए भी विहित थे, फिर भी पशुपालन, वाणिज्य और कृषि उनकी जीविका के साधन थे–

दानमध्ययनं यज्ञो वैश्यस्यापि त्रिधैव सः।

वाणिज्यं पशुपाल्यं च कृषिश्चैवास्यजीविका।।[18]

विष्णुपुराण में भी लोकपितामह ब्रह्मा के द्वारा प्रदत्त वैश्य के इन्हीं कर्मों को निर्दिष्ट किया गया है।[19] श्रीमद्भागवतपुराण के अनुसार वैश्य को सर्वदा ब्राह्मण वंश का अनुयायी रहकर गोरक्षा, कृषि एवं व्यापार के द्वारा अपनी जीविका चलानी चाहिए।[20]

द्विजातियों–ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य की सेवा करना ही शूद्र का मुख्य धर्म था।[21] श्रीमद्भागवतपुराण में भी इसी बात का उल्लेख करके शूद्र की जीविका का निर्वाह करने वाला उसके स्वामी को बताया गया है–

शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा वृत्तिश्च स्वामिनो भवेत्।।[22]

मार्कण्डेय पुराण में दान, यज्ञ, द्विजातियों की सेवा –ये तीनों शूद्र के कर्म बताये गये हैं तथा कारुकर्म, पशुपालन एव ंक्रय–विक्रय इनकी जीविका के साधन हैं–

दानं यज्ञोऽथ शुश्रूषा द्विजातीनां त्रिधा मता।

व्याख्याताः शूद्रधर्मोपजीविकाकारुकर्मजा।।

तद्वद्द्विजातिशुश्रूषापोषणांक्रयविक्रयैः।[23]

ब्राह्माण्ड पुराण में भी शूद्र के दो प्रमुख कर्त्तव्य–शिल्प और भृति बताये गये हैं।[24] पुराणों में उन्हें दान करने की अनुमति भी दी गयी है।[25] तथा यह वर्णित है कि यदि वे भक्ति में निमग्न रहें, मदिरापान से दूर रहें, जितेन्द्रिय बनें और निर्भय रहें, तो उन्हे मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है–

अमद्यपश्च यः शूद्रो भगवद्भक्तो जितेन्द्रियः।[26]

आपद्धर्म–

आपत्तिकाल में ब्राह्मण को क्षात्र अथवा वैश्य कर्म करने का अधिकार है। गरुड पुराण में बताया गया है कि ब्राह्मण को वैश्यकर्म करने का अधिकार है किन्तु वैश्य कर्म में भी वह लवण तथा घोड़ों को नहीं बेच सकता था। मूर्ख ब्राह्मण, युद्ध–विमुख क्षत्रिय, जड़–वैश्य और पढ़े हुए शूद्र का परित्याग करना ही श्रेयस्कर था।[27] गरुड पुराण में सच्छूद्र का उल्लेख मिलता है। जो शूद्र वर्ण व्यवस्था के नियमों का सम्यक् आचारण करते थे, उन्हें ही सच्छूद्र कहा गया है। श्रीमद्भागवतपुराण के अनुसार निम्न वर्ण का पुरुष बिना आपत्ति काल के उत्तम वर्ण की वृत्तियों का अवलम्बन न करे। क्षत्रिय दान लेना छोड़कर ब्राह्मण की शेष वृत्तियों का अवलम्बन ले सकता है। आपत्तिकाल में सभी सब वृत्तियों को स्वीकार कर सकते हैं।

जघन्यो नोत्तमां वृत्तिमनापदि भजेन्नरः।।

ऋते राजन्यमापत्सु सर्वेषामपि सर्वशः।।[28]

इसमें बताया गया है कि निम्नवर्ण की सेवा करना श्वानवृत्ति है। (श्ववृत्तिर्नीचसेवनम्) तथा ब्राह्मण और क्षत्रिय को इस निन्दित वृत्ति का कभी आश्रय नहीं लेना चाहिए क्योंकि ब्राह्मण सर्ववेदमय और क्षत्रिय सर्वदेवमय है।

वर्जयेत् तां सदा विप्रो राजन्यश्च जुगुप्सिताम्।

सर्ववेदमयो विप्रः सर्वदेवमयो नृपः।।[29]

प्रत्येक वर्ण को आपद्काल छोड़कर अन्य सभी परिस्थितियों में स्वधर्म का पालन करना चाहिए क्योंकि स्वधर्मपालन से ही सभी सिद्धियों की प्राप्ति होती है। परधर्म का आचरण करने से स्वधर्म की हानि होती है और नरक की प्राप्ति होती है।[30]

इस प्रकार पौराणिक चातुर्वर्ण्य व्यवस्था में ब्राह्मण,क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णों का जो दिग्दर्शन हुआ है, वह वस्तुतः गुणकर्मानुसारी ही है। यह माना गया है कि पूर्वजन्मों के कर्मों के अनुसार ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र उत्पन्न हुए।[31] विष्णुपुराण में भी यह कहा गया है कि सत्वगुण से युक्त ब्राह्मण,रजोगुण से युक्त क्षत्रिय, रज तथा तम गुण वाला वैश्य एवं केवल तम गुण से युक्त शूद्र ब्रह्मा की सन्तान है।[32] ये उद्धरण गीतोक्त कथन **'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः'** का ही समर्थन करते हैं। वर्ण व्यवस्था का मूल उद्देश्य है शक्ति ह्रास से समाज को बचाना और आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त करना। यही हिन्दू शक्ति की चिरजीविता का प्रमाण है। शक्ति का

निरन्तर क्षय होने से ही ग्रीस, रोमन आदि जातियों का ऐकान्तिक पतन हुआ। शक्ति के ह्रास से बचने के लिए यह आवश्यक है कि सभी वर्ण अपने–अपने कार्य करें। वास्तव में चारों वर्ण अन्योन्याश्रित थे। इसमें ईर्ष्या या द्वेष के लिए स्थान ही नहीं है। एक वर्ग के पास विधान बनाने की शक्ति और शिक्षा का उत्तरदायित्व है, तो दूसरे के पास राज्याधिकार है, तीसरे के पास कोष और उत्पादन है, तो चौथे के पास श्रमशक्ति है। क्षत्रियों की अधिकार–सत्ता पर ब्राह्मणों का और दोनों की अवश्यकता पूर्ति पर वैश्यों का अधिकार है। तीनों के मूलभूत शूद्र हैं। इसी अन्योन्याश्रयभाव के आधार पर वायुपुराण में प्रतिपादित किया गया है–

यदि ते ब्राह्मणा न स्युर्ज्ञानयोगवहाः सदा।
उभयोर्लोकयोर्देवि स्थितिर्न स्यात्समासतः।।
यदि निःक्षत्रियो लोको जगत्स्यादधरोत्तरम्।
रक्षणात्क्षत्रियैरेव जगद्भवति शाश्वतम्।।
तथैव देवि वैश्याश्च लोकयात्राहिताः स्मृताः।
अन्ये नानुपजीवन्ति प्रत्यक्षफलदा हि ते।।
शूद्राश्च यदि ते न स्युः कर्मकर्ता न विद्यते।
त्रयः पूर्वे शूद्रमूलाः सर्वे कर्मकराः स्मृताः।।

इस प्रकार यह वर्ण–व्यवस्था कार्यों के निष्पादन तथा सामाजिक व्यवस्था के नियमन के लिए अत्यन्त आवश्यक थी। गीता में भी कहा गया है कि वर्णसंकर से प्रजा का नाश होता है।[33]

आज के भारत में भी बहुत कुछ आदर्श प्रमेय तथा दृष्टिकोण इसी संख्या से अभिप्रेरित होते हैं, यद्यपि बदली हुई मान्यताएँ–प्रजातन्त्रवाद, औद्योगीकरण एवं नगरवाद ने भारतीय सामाजिक ढाँचे को चुनौती दे रखी है।[34] 'वर्ण–व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति के कर्त्तव्य उसकी सहज मनोवृत्ति और उसके गुणों पर आधारित थे। इसलिए वर्तमान काल में भी वर्ण का आधार किसी व्यक्ति का कार्य या उसकी कार्यक्षमता होनी चाहिए, न कि उसका जन्म। किसी भी वर्ण के विशेषाधिकार नहीं होने चाहिए क्योंकि प्रत्येक वर्ण का व्यक्ति समाज में अपनी मनोवृत्ति और योग्यता के अनुसार समाज की उन्नति में योगदान करता है।[35]

सन्दर्भ सूची–

1.मत्स्यपुराण 145/52, पुराणपर्यालोचनम् (समीक्षात्मक भाग), श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी, पृ. 229

2. ऋग्वेद 1/73/7 कृष्णं च वर्णमरुणं च संधुः।
ऋग्वेद 2/3/5 वर्ण पुनाना यशसं सुवीरम्।

3. वही 2/12/4 यो दासं वर्णमधरं गुहाकः।

4. मार्कण्डेय पुराण 24/34 एवमाचरेत राजा चातुर्वर्ण्यस्य रक्षणम्।

5. गरुडपुराण 1/4/34

6. विष्णु पुराण 1/6/6 ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च द्विजसत्तम।
पादोरुवक्षः स्थलतो मुखतश्च समुद्गताः।।

7.वायु पुराण 9/113 वक्त्रादस्य ब्राह्मणाः सम्प्रसूता यद्वक्षतः क्षत्रिया पूर्वभागे।

वैश्याश्चोरोर्यस्य पद्भ्यां च शूद्राः सर्वे वर्णा गात्रतः संप्रसूता।।

8. ऋग्वेद– 10/90/12 ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
उरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत।।

9. श्रीमद्भगवद्गीता 4/13

10.मार्कण्डेय पुराण 25/3

11.कूर्मपुराण पूर्वविभाग 2/36 गरुडपुराण 1/49/2

12. श्रीमद्भागवतपुराण 7/11/14

13. प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास– डॉ.जयशंकर मिश्र, पृ,113

14. गरुड पुराण 1/49/3

15.कुर्मपुराण पूर्वविभाग 2/37 दानमध्ययनं यज्ञो धर्मः क्षत्रियवैश्ययोः।
दण्डो युद्धं क्षत्रियस्य कृषिर्वैश्यस्य शस्यते।।

16. मार्कण्डेय पुराण 25/5 दानमध्ययनं यज्ञाः क्षत्रियस्याप्ययं त्रिधा।
धर्मप्रोक्तः क्षितेरक्षाशस्त्राजीवश्चजीविका।।

17.श्रीमद्भागवतपुराण 7/11/14

18.मार्कण्डेय पुराण 25/6

19. विष्णु पुराण 3/8/30 पाशुपाल्यं च वाणिज्यं कृषिं च मनुजेश्वर।
वैश्याय जीविकां ब्रह्मा ददौ लोकपितामहः।।

20. श्रीमद्भागवतपुराण 7/11/15 वैश्यस्तु वार्तावृत्तिश्च नित्यं ब्रह्मकुलानुगः।।

21. कूर्मपुराण पूर्वविभाग 2/38 तथा गरुडपुराण 1/49/4
शुश्रुषैव द्विजातीनां शूद्राणां धर्मसाधनम्।

22. श्रीमद्भागवतपुराण 7/11/15

23.मार्कण्डेय पुराण 25/7–8

24.ब्रह्माण्डपुराण 2/7/163 शिल्पाजीवं भूतां चैव शूद्राणां व्यदधात्प्रभुः।

25.मत्स्यपुराण 17/7 दानप्रधानः शूद्रः स्यादित्याह भगवान्प्रभुः।
विष्णुपुराण 3/8/34 दानं दद्याच्छूद्रोऽपि पाकयज्ञैर्यजेत च।

26.वायुपुराण 101/353

27.गरुडपुराणः एक अध्ययन– डॉ0 अवधबिहारी लाल अवस्थी,पृ.120

28.श्रीमद्भागवतपुराण 7/11/20

29. श्रीमद्भागवतपुराण

30.मार्कण्डेय पुराण 25/9 स्ववर्णधर्मात्संसिद्धिं नरः प्राप्नोति न च्युतः।
प्रयाति नरकं प्रेत्य प्रतिसिद्धं निषेवणात्।।

31. ब्रह्माण्ड पुराण 2/7/133 वायु पुराण 8/140–41

ब्राह्मणाः क्षत्रियाः वैश्याः शूद्रा द्रोहिजनास्तथा।
भाविताः पूर्वजातीषु कर्मभिश्च शुभाशुभैः।।

32.विष्णु पुराण 1/64–65

33.श्रीमद्भगवद्गीता 3/24 उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम्।
संकरस्य च कर्ता स्यामुपहन्यमिमाः प्रजाः।।

34. भारतीय सामाजिक व्यवस्था–प्रकाश चन्द्र दीक्षित,पृ.245

35. प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास– ओम प्रकाश,पृ 46